संस्कार तो डाल !

अरे जीव ! तुझे ऐसे महान् आत्महितकारी शास्त्रों को पढने का समय भी नहीं मिलता ? एक बार ध्यानपूर्वक इनका स्वाध्याय तो कर ! विचार कर ! और अन्तर में आत्महित के संस्कार तो डाल !

राग से भिन्न अद्भुत आत्मतत्त्व का घंटे-दो घंटे विचार मन्थन करना चाहिये। राग से भिन्न ऐसे प्रयत्नों के साथ तुझे उत्कृष्ट पुण्य भी बँधेगा ह्न जिससे तू स्वर्ग या उत्तम मनुष्य भव में जायेगा और वहाँ पुरुषार्थ करके सम्यग्दर्शन अवश्य प्राप्त करेगा; क्योंकि इस भव में ' मैं राग से भिन्न चिदानन्द भगवान आत्मा हूँ' ह्न ऐसे संस्कार डाले हैं।

जिस मिट्टी के नये बर्तन में पानी की बूँदें छिडकने से वह बर्तन उन्हें सोख लेता है; परन्तु बाद में वे ही बूँदे एकत्रित होकर बढ़ते-बढ़ते बाहर आती हैं; उसीप्रकार ' मैं त्रिकाल राग से भिन्न ज्ञानस्वभावी हूँ, पुण्य-पाप के परिणाम से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है' ह्न इस प्रकार संस्कार डालने पर इस भव में कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो सके; परन्तु अगले भव में सम्यग्दर्शन अवश्य प्राप्त करेगा।

जिसके अन्तर में वीतराग मार्ग के संस्कार पड़ेंगे उसे उत्कृष्ट पुण्य बँधने से वह नरकादि दुर्गतियों में कैसे जाएगा ? वह तो जहाँ साक्षात् भगवान का योग है ह्न ऐसे महाविदेह में उत्तम मनुष्य भव प्राप्त करेगा और पुरुषार्थ करके सम्यग्दर्शन अवश्य प्राप्त कर लेगा।

इसलिये शास्त्र-स्वाध्याय और विचार-मनन के द्वारा आत्महित के संस्कार अवश्य डालने चाहिये।

ह्न आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी,
(आत्मधर्म , जनवरी : 1978 के अंक से)

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 22 263 अंक :11

प्रवचनसार पद्यानुवाद
ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार
द्रव्यसामान्य प्रज्ञापन अधिकार

उपयोग आतमराम का अर वर्तना गुण काल का।
है अमूर्त द्रव्यों के गुणों का कथन यह संक्षेप में।।१३४।।
हैं बहुप्रदेशी जीव पुद्गल गगन धर्माधर्म सब।
है अप्रदेशी काल जिनवरदेव के हैं ये वचन।।१३५।।
कालद्रव को छोड़कर अवशेष अस्तिकाय हैं।
बहुप्रदेशीपना ही है काय जिनवर ने कहा।।११।।•
गगन लोकालोक में अर लोक धर्माधर्म से।
है व्याप्त अर अवशेष दो से काल पुद्गलजीव हैं।।१३६।।
जिसतरह परमाणु से है नाप गगन प्रदेश का।
बस उसतरह ही शेष का परमाणु रहित प्रदेश से।।१३७।।
पुद्गलाणु मंदगति से चले जितने काल में।
रे एक गगनप्रदेश पर परदेश विरहित काल वह।।१३८।।
परमाणु गगनप्रदेश लंघन करे जितने काल में।
उत्पन्नध्वंसी समय परापर रहे वह ही काल है।।१३९।।

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

•तात्पर्यवृत्ति टीका में उपलब्ध गाथा

पर संबंध ही दु:ख का कारण

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 28 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

दु:खसन्दोह भागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजात्म्येनं ततः सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिः ।।28।।

इस संसार में देहादिक के संयोग से प्राणियों को दु:खसमूह भोगना पड़ता है अर्थात् अनंतदु:ख भोगना पड़ता है; इसलिये उन समस्त संबंधों को मैं मन–वचन–कायपूर्वक त्यागता हूँ।

(गतांक से आगे...)

वीतरागी जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि हे भाई ! तू हमारा लक्ष्य क्यों करता है ? हमारी ओर जो तेरा झुकाव है, वह तेरे लिये अहितकर है। बाह्य समस्त पर पदार्थ तेरे लिए परद्रव्य है, तेरा तत्त्व बाह्य समस्त तत्त्वों से भिन्न है। द्रव्यकर्मोदय से प्राप्त संयोगों से भी तू निराला है। तू तो अपने स्वभाव से अनंत शक्तिसम्पन्न है; अत: अपने निजतत्त्व का आश्रय करके तू उसमें ही सिमट जा। भाई ! स्वद्रव्य के आश्रय से सुगति और परद्रव्य के आश्रय से दुर्गति होती है। इस बात को वीतरागी जिनेन्द्रदेव के अतिरिक्त और कोई नहीं कह सकता ।

ज्ञानी जीव जब स्वरूप में सावधान नहीं रहता, तब उसे परसंग का शुभराग आता है, पूजा–भक्ति आदि के भाव उत्पन्न होते हैं; किन्तु ये सब परभाव हेय हैं ह्न ऐसा वह जानता है। स्त्री–पुत्रादि परद्रव्यों के लक्ष से अशुभराग उत्पन्न होता है, उससे बचने के लिये ज्ञानी के शुभभाव अवश्य आते हैं; किन्तु वे भी हेय हैं, व्यवहार हैं। स्वदृष्टि में, निश्चयनय में व्यवहार का निषेध है।

भगवान आत्मा आप स्वयं ही कृपासागर है। दूसरे की कृपा या बाहर की सेवा की उसे जरूरत नहीं पड़ती। कहा भी है ह्न **'करुणा हम पावत हैं तुमरी, यह बात रही सुगुरुगम की'** अंदर के भगवान की जिसे कृपा हो गई, उसे जिनेन्द्र भगवान

की कृपा हुई ह्न ऐसा कहने में आता है।

भगवान आत्मा मन-वचन-काय से भिन्न है; इसप्रकार चिंतन, मनन, अभ्यास करे तो मोक्षसुख की प्राप्ति होती है और मन-वचन-काय से आत्मा अभिन्न है ह्न ऐसे चिंतन से दु:खरूप संसार की प्राप्ति होती है।

भाई ! यह बात तो स्थिर चित्त करके सुनने जैसी है।

प्रश्न : आप कहते हो कि परद्रव्यों का संग मत करो; लेकिन यह दुकान लगाकर बैठ गये ह्न इसका क्या करें ? ब्याह किया, पुत्रादि हुये ह्न इनका क्या करें ? इनका पालन-पोषण तो करना ही पड़ेगा न ?

उत्तर : अरे भाई ! तू तेरे मन-वचन-काय में भी किसीप्रकार का फेरफार नहीं कर सकता तो परद्रव्यों का कार्य करने के लिये क्यों भागता है ? प्रत्येक द्रव्य का कार्य उसमें स्वयं में होता है, उसका कर्त्ता तू नहीं है। शरीरादि किसी भी परद्रव्य में तू कुछ नहीं कर सकता। 'मैं उन परद्रव्यों में कुछ कर सकता हूँ' ह्न यह तो सिर्फ तेरा भ्रम है।

प्रश्न : यदि इस भ्रम को निकाल देवें तो पैर दर्द, सिर दर्द आदि का दु:ख मिट जायेगा क्या ?

उत्तर : अरे ! जब यह तेरी चीज है ही नहीं तो इसका दु:ख मिटे या न मिटे इससे तुझे क्या ? जैसे हमारा बंगला जल रहा हो तो उसमें लगी आग बुझाना ठीक है; लेकिन यदि जंगल में खाली झोपड़ी जल रही हो तो उसको बुझाने से हमें क्या मतलब ? उसीप्रकार आत्मा से भिन्न इस खाली जड़ शरीर में कोई रोग हो तो उसे दूर करने से आत्मा को क्या लाभ है ? जब आत्मा का शरीर ही नहीं है, रोग ही नहीं है तो फिर दु:ख कहाँ रहा ? दु:ख तो शरीरादि में सम्बन्ध मानने से होता है।

इस गाथा में तो पूरे जिनागम का सार भरा है। मन-वचन-काय मेरे हैं ह्न यह मान्यता संसार है और मन-वचन-काय मेरे नहीं है ह्न यह मान्यता मोक्ष का कारण है। अब तुझे जैसा अच्छा लगे, वैसा कर !

इस संसार में देहादिक के संयोग से प्राणियों को दु:ख भोगना पड़ता है; इसलिये मन-वचन-कायपूर्वक मैं बाह्य समस्त परसंबंधों को छोड़ता हूँ ह्न ऐसा

पक्का निर्णय कर ! शरीर-मन-वाणी को अपना माननेवाली दृष्टि संसार है, इस दृष्टि को छोड़कर ही तुझे मुक्ति की प्राप्ति होगी।

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द, सहजानन्द, अमूर्त, शुद्ध, चैतन्यमूर्ति, आनन्दघन है; उसे छोड़कर मन-वचन-काय से मेरे सब काम होते हैं ह्न ऐसी मान्यता मिथ्यादर्शन है, संसार है।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द, शुद्ध ज्ञायकज्योतिस्वरूप है। उसका अस्तित्व शुद्ध और पवित्र है, उसकी अन्तर्दृष्टि का नाम ही सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन ही धर्म की प्रथम सीढ़ी है। इससे विरुद्ध शरीर मेरा है, मुझे मन से ज्ञान होता है, मैं वाणी से बोलता हूँ, मैं दूसरों को समझा सकता हूँ ह्न ऐसे शरीरादि के निमित्त से जो जीव अपना अस्तित्व स्वीकार करता है, वह संसारी है, मिथ्यादृष्टि है।

अपने क्षेत्र से बाहर की वस्तु तो आत्मा से भिन्न है ही; अपितु एक ही क्षेत्र में रहनेवाले शरीर-मन-वाणी भी आत्मा से भिन्न ही हैं। आत्मा तो ज्ञानानन्दरूप महासत्ता है, महापदार्थ है; जिसमें अनंतज्ञान-दर्शन-सुख आदि अनंत गुण भरे हैं। इन गुणों की प्रतीतिपूर्वक निज अस्तित्त्व में दृष्टि रखनेवाला धर्मी जीव शरीर, मन, वाणी की क्रिया को अपना नहीं मानता और इस दृष्टि से रहित अज्ञानी जीव शरीर, मन, वाणी की क्रिया को अपनी मानते हुये संसार में ही रखड़ते रहते हैं।

प्रश्न : .तो हमें बोलना चाहिये या नहीं बोलना चाहिये ?

उत्तर : कौन बोलता है और कौन मौन रहता है ? भाषा वर्गणा जब आत्मा की है ही नहीं तो आत्मा किससे बोले और क्या मौन रहे ? मन,वाणी आदि जड़ पुद्गल का अस्तित्त्व तो पुद्गल में है, आत्मा में नहीं।

मन, वचन, काय के अस्तित्त्व में मैं नहीं हूँ, उसकी क्रिया मेरी क्रिया नहीं है। पुण्य-पाप, संकल्प-विकल्प आदि मन की क्रियायें, बोलने आदिरूप वचन की क्रियायें और हलन-चलनरूप शरीरादि की अन्य अनेक क्रियायें मेरे स्वभाव में नहीं है, वे मेरा कार्य भी नहीं हैं। मैं तो शुद्ध,चिदानन्दस्वरूप ज्ञायकद्रव्य हूँ ह्न ऐसी अन्तर्दृष्टि करके राग और देहादिक से भिन्न अपने स्वभाव का अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है, मोक्षमार्ग है ।

(क्रमश:)

आगम क्या है ?

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की आठवीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्म-रसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

तस्स मुहुग्गदवयणं पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं ।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ।।8।।

पूर्वोक्त परमात्मा के मुख से निकली हुई पूर्वापर विरोध रहित, तत्त्वार्थों का कथन करनेवाली शुद्धवाणी को आगम कहा गया है।

(गतांक से आगे ...)

पहले सर्वज्ञदेव कैसे होते हैं ह्न यह बतलाया, पश्चात् उन सर्वज्ञदेव की वाणीरूप परमागम कैसा होता है ह्न यह भी बतलाया।

अब आगामी श्लोक द्वारा जिनवाणी को नमस्कार करते हैं ह्न

ललितललितं शुद्धं निर्वाणकारणकारणं,
निखिल भविनातेतत्कर्णमृतं जिन सद्वच:।
भवपरिभवारण्यज्वालित्विषां प्रशमे जलं,
प्रतिदिनमहं वन्दे वन्द्यं सदा जिनयोगिभि:।।

जो जिनवचन ललित में ललित हैं, शुद्ध हैं, निर्वाण के कारण का कारण हैं, सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत हैं, भवरूपी अरण्य के उग्र दावानल को शमन करने में जल हैं और जो जैन योगियों से सदा वन्द्य हैं ह्न ऐसे जिन भगवान के सद्वचनों (सम्यक् जिनागम) को मैं प्रतिदिन वंदना करता हूँ।

सर्वज्ञ परमात्मदशा प्रकट होने पर ओष्ट व जिह्वा के हलन-चलन बिना ही दिव्यध्वनि छूटती है। वह वाणी क्रमवाली नहीं होती, तथा सहज और अतिशय प्रसन्नता उत्पादक एवं मनोहर होती है। सर्वजीव निज-निज भाषा में उसे समझ लेते हैं, वह वाणी शुद्ध है अर्थात् रागरहित निरपेक्षस्वभाव के आश्रय से ही कल्याण बतलानेवाली है; किन्तु राग से कल्याण नहीं बतलाती। भगवान शुद्ध हैं और उनकी वाणी भी शुद्ध है। जो वाणी राग का पोषण करे, वह वाणी शुद्ध नहीं कही जा सकती।

वह वाणी निर्वाण के कारण का कारण है अर्थात् महा आनंद की प्राप्तिरूप मोक्ष का कारण निश्चय रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग है और उस मोक्षमार्ग का कारण सर्वज्ञदेव की वाणी है। भगवान ने दिव्यध्वनि में जो कुछ कथन किया; वही संतो ने अनुभव किया और उसी की रचना शास्त्ररूप में हुई। वे ही शास्त्र मोक्षमार्ग के कारण हैं।

वह वाणी सर्व भव्यजीवों के कर्णों के लिये अमृत है। अभव्यजीव भगवान की वाणी सुनने के लिये अयोग्य हैं। भव्यों की संख्या से अभव्यजीव अनंतवें भाग हैं। उन अभव्यजीवों की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो भव्यजीवों की ही बात है। उन भव्यजीवों को भगवान की वाणी कहती है कि हे जीव ! तू परमानन्द मूर्ति भगवान है। क्षणिक विकार की शरण छोड़ और स्वभाव की शरण ले। अपने स्वभाव की शरण से तू भगवान बन जायेगा। इसप्रकार भगवान की वाणी भव्य जीवों के कानों में अमृत उड़ेलती है। श्रोताओं को चैतन्य की बात अमृत जैसी लगती है; इसलिये वीतराग की वाणी अमृत है।

भगवान यह नहीं कहते कि मेरे द्वारा तुम्हारा कल्याण होगा; अपितु तुम्हारे स्वभाव से ही तुम्हारा कल्याण होगा ह्न ऐसा स्वाश्रय बताकर अमृत की ध्वनि भव्यजीवों के कानों में उड़ेलते हैं। अमृत अर्थात् मरणरहित चैतन्य आत्मा को भगवान की वाणी बतलाती है; अत: वह अमृत है।

जिस जीव ने निश्चय मोक्षमार्ग प्रकट किया, उसको भगवान की वाणी कारण कही जाती है। कार्य हो तभी तो उसका कारण कहा जाये ? मोक्षमार्ग प्रकट करे; उसी को भगवान की वाणी निमित्त कही जाती है। आत्मा को समझे उसके कान में भगवान की वाणी ने अमृत उड़ेला ह्न ऐसा कहा जाता है।

यह जीव अज्ञानभाव से भवरूपी भट्टी में जल रहा है। उसे शान्त करने के लिये भगवान की वाणी जल के समान है। अरे जीव ! तू शान्त हो और अपने चैतन्य की शरण ले। तुझे अपने चैतन्य की शरण में ही शांति मिलेगी। इसतरह चैतन्य

की शरण कराकर भगवान की वाणी भव-भव के दावानल को शांत कर देती है अर्थात् भव का नाश कर देती है। अरे जीव ! भव का भाव तेरा स्वरूप नहीं है। भवरहित तेरा स्वभावभाव है, इसभांति चैतन्यस्वभाव बतलाकर भगवान की वाणी भव-भव के उग्र दावानल को अत्यन्त शांत करनेवाली है।

वह भगवान की वाणी जैन योगियों के द्वारा वंद्य है। स्वभाव का आश्रय करके राग को जिसने जीत लिया है और स्वभाव में जुड़ानरूप राग जिसने किया है ह्न ऐसे जीव को जैन योगी कहते हैं ऐसे जैन योगियों से जिनवाणी सदा वंद्य है।

परिपूर्ण अखण्डानंदी आत्मा है, उसमें अनंत गुण भरे हैं। उसकी पर्याय में क्षणिक विकार है, उस विकार का स्वभाव के आश्रय से अभाव होने पर परमात्मदशा प्रकट होती है ह्न ऐसा बतानेवाली जिनवाणी सदा जैन योगियों द्वारा वंद्य है।

टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि उन जिनभगवान के सम्यक्वचनों को मैं प्रतिदिन वंदना करता हूँ।

इसप्रकार सर्वज्ञ की वाणीरूप आगम का स्वरूप कहकर उसे नमस्कार किया। अब आगामी गाथा कहते हैं ह्न

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता ।।9।।

विविध गुण पर्यायों से युक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये तत्त्वार्थ कहे हैं।

सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य कोई भी छह द्रव्यों को भिन्न-भिन्न नहीं जान सकता और उनके गुण-पर्यायों की व्याख्या भी अन्यत्र नहीं मिल सकती। छहों द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्याय सहित हैं। किसी के गुण-पर्याय किसी दूसरे के कारण नहीं हैं।

(1) जगत में जीव अनंत हैं। सिद्ध भगवान अनंत हैं। आलू आदि कंदमूल के एक-एक टुकड़े में असंख्य औदारिक शरीर और एक-एक शरीर में सिद्धों से अनंतगुणे जीव हैं। यह बात जीव तत्त्व की व्यवहार श्रद्धा में आ जाती है।

(2) जीव से अनंतगुणे पुद्गल काय हैं। जगत में वस्तु सत् है।

ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या ह्न ऐसा नहीं है।

(3) धर्मास्तिकाय नाम का एक द्रव्य है, जो सम्पूर्ण लोक में व्यापक है। वह जीव और पुद्गल की गति में निमित्त है।

(4) अधर्मास्तिकाय भी लोक में व्यापक एक द्रव्य है। गति करते हुये जीव और पुद्गल जब स्थित होते हैं, तब उनको यह द्रव्य निमित्त होता है।

(5) काल नाम के असंख्य द्रव्य लोक में हैं, वे द्रव्यों के परिणमन में निमित्त हैं।

(6) आकाश नाम का एक द्रव्य है और वह सर्व व्यापक है।

यह छहों द्रव्य तत्त्वार्थ हैं और वे सभी अपने-अपने गुण-पर्यायों सहित हैं। प्रत्येक द्रव्य स्वयं त्रिकाली शक्तिवाला और समय-समय की विविध पर्यायवाला है। किसी अन्य के कारण उनके गुण और पर्याय नहीं हैं। उंगली चलती है, वह पुद्गल की पर्याय है। पुद्गल स्वयं अपनी विविध पर्यायवाला है। किसी दूसरे के कारण उसकी पर्याय नहीं होती।

इस गाथा में मतिज्ञानादि को विभावगुण कहेंगे। गुण में शुद्धगुण और विभावगुण ह्न ऐसे दो प्रकार हैं। मूल सूत्र में **विविधगुणपर्यायसहित** ऐसा आचार्यदेव ने कहा है, उसमें से **कारणशुद्धजीव** और **कार्यशुद्धजीव** इत्यादि का अद्भुत वर्णन टीका में करेंगे। यहाँ गाथा में छह द्रव्यों के पृथक-पृथक नाम कहे गये हैं।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत; मन-वचन-काय; आयु तथा श्वासोच्छ्वास नाम के दश प्राणों से संसार दशा में जो जीता है, जियेगा और पूर्व में जीता था, वह जीव है।

जो जीव स्वभाव का भान नहीं करते, उन्हें दशप्राणों का संयोग भविष्य में भी रहेगा। जो स्वभाव का भान करके सिद्ध हो जाते हैं, उनके दश प्राणों का अभाव हो जाता है। संग्रहनय की अपेक्षा से जो दश प्राणों से जिये उसे जीव कहा है; परन्तु यह दश प्राण जीव के स्वभाव नहीं हैं। निश्चय से तो भावप्राण धारण करने से जीव है। ये भावप्राण त्रिकाल हैं। इनसे जीता है, इसलिये जीव है।

व्यवहार से द्रव्यप्राण धारण करने के कारण जीव है। व्यवहार प्राण के संयोग के समय भी निश्चय चैतन्यप्राण का अभाव नहीं हो जाता। **(क्रमशः)**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमश: प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

आत्मा के सिवा आत्मा को और कौन आशीर्वाद दे सकता है और दूसरा कौन उसके आशीर्वाद को स्वीकार कर सकता है ?

समकिती को भगवान आत्मा अचल चेतनास्वरूप भासित होता है। वह रत्नत्रय के राग की एवं निमित्त की अपेक्षा बिना ही स्वयं, स्वयं से, स्वयं को, स्वयं में निमग्न रखता है।दया, दान, व्रतादि के परिणाम कर्म चेतना हैं और सुख-दुःख का वेदन कर्मफल चेतना है। आत्मा दोनों से रहित स्वयं को स्वयं में अन्तर्मग्न रखता है।

प्रवचनसार गाथा-172 के अलिंगग्रहण के छठवें बोल में आता है कि आत्मा अपने स्वभाव से जाननेवाला होने से प्रत्यक्ष ज्ञाता है। वह स्वभाव से ही निरन्तर अन्तर्मग्न रहता है। ऐसा अनुभव धर्मीजीव को ही होता है। अज्ञानी जीवों को तो स्वरूप की खबर ही नहीं है। वे तो क्रिया-काण्ड में ही मग्न रहते हैं, परन्तु इससे कोई लाभ नहीं है; क्योंकि बाह्य व्यवहार से अन्तर्मग्नता नहीं होती। नियमसार गाथा-3 में कहा है कि भगवान आत्मा की दृष्टि, उसका ज्ञान अर्थात् स्व-संवेदनज्ञान और उसी में लीनतारूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही कर्त्तव्य हैं। अन्य कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है। यद्यपि व्यवहार के विकल्प उठते हैं; तथापि वे कर्त्तव्य नहीं हैं।

देखो ! यहाँ अन्तिम मंगल में आचार्य अमृतचन्द्रदेव आत्मा को आशीर्वाद देते हुये कहते हैं कि स्वयं ही स्वयं को स्वयं से अन्तर्मग्न रखता है। व्यवहाररत्नत्रय तो कथनमात्र है, इससे आत्मा में मग्न नहीं हो सकता। भाई ! विकल्प से निर्विकल्पवस्तु किसप्रकार ध्यान में आ सकती है ?

प्रथम मंगलाचरण में **नम: समयसाराय** कलश में जैसे अस्ति से बात कही है; उसीप्रकार यहाँ भी अस्ति से ही बात की है। समयसार अर्थात् चित्स्वभावी नित्यानन्द प्रभु भगवान आत्मा, **स्वानुभूत्या चकासते** कहकर स्वानुभूतिदशा से प्रकाशित ह्न इसतरह **पर्याय** की बात की तथा **चित्स्वभावाय** कहकर **गुण** की बात की है। **भावाय** कहकर **द्रव्य** कहा तथा **सर्वभावान्तरच्छिदे** कहकर सर्वज्ञता सिद्ध की। इसप्रकार पहले कलश में आत्मा द्रव्य, अचलचेतना गुण एवं आत्मा में मग्नता ह्न यह पर्याय ली है।

इसतरह अस्ति से कहने पर नास्ति की बात स्वत: आ जाती है। शास्त्रों में मगलाचरण तीन बार आता है ह्न 1. आदि मंगल 2. मध्य मंगल एवं 3. अन्त मंगल। कलश 122 में मध्य मंगल आ गया है। वहाँ कहा है कि ह्न शुद्धनय त्यागने योग्य नहीं है; क्योंकि उसके अत्याग से कर्मबन्ध नहीं होता और उसके त्याग से बन्ध ही होता है। यह शास्त्र का निचोड़ है।

'जिसने मोह का नाश किया है' ह्न यह व्यवहार का वचन है, वस्तुत: तो पर की सावधानी का भाव ही नहीं होता, फिर मोह का नाश किया ह्न यह बात कहाँ ठहरती है; किन्तु व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। अहाहा ! चैतन्य के आश्रय से चैतन्य का जो निर्मल उपयोग प्रकट हुआ, वह अत्यन्त निर्विकार है।

भगवान आत्मा का स्वभाव कर्मों से भिन्न है, विरुद्ध है। अस्ति से ज्ञान आनंद आदि स्वभाव जब पूर्ण प्रगट हो जाये तब कर्मों का नाश हो जाता है। इसे ही कर्म की ओर से कहे तो व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि इसने मोह का नाश किया।

जैसा आत्मा द्रव्य-गुण से निर्मल है, वैसा ही वह स्व-आश्रय से पर्याय में निर्मल, पूर्ण प्रगट हुआ है अर्थात् द्रव्य के आश्रय से पर्याय का निर्मल और पूर्ण प्रगट हो जाना ही साध्यरूप सिद्धदशा है।

ऐसी उदय को प्राप्त अमृतमय चन्द्रमासमान ज्ञानज्योति सर्व ओर से जाज्वल्यमान रहो। ऐसा स्वयं ही स्वयं को आशीर्वाद दिया है।

अब आचार्य अमृतचन्द्रदेव आत्मख्याति टीका समाप्त करते हैं।

अज्ञानदशा में आत्मा स्वरूप को भूलकर राग-द्वेष में प्रवृत्त होता था, परद्रव्यों की क्रिया का कर्त्ता बनता था। क्रिया के फल का भोक्ता होता था, इत्यादि भाव करता था। किन्तु अब ज्ञानदशा में वे भाव कुछ भी नहीं है। ऐसा अनुभव किया जाता है। इसी अर्थ का पोषक 277 वाँ श्लोक कहते हैं।

(शार्दूलविक्रीडित)

यस्माद् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः।
भुंजाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित्किल ॥

(हरिगीत)

गतकाल में अज्ञान से एकत्व पर से जब हुआ।
फलरूप में रस-राग अर कर्तृत्व पर में तब हुआ॥
उस क्रियाफल को भोगती अनुभूति मैली हो गई।
किन्तु अब सद्ज्ञान से सब मलिनता लय हो गई॥

जिस परसंयोगरूप बंध पर्याय जनित अज्ञान से प्रथम अपना और पर का द्वैत हुआ अर्थात् स्व-पर के मिश्रितपनारूप भाव हुआ, द्वैतभाव होने से स्वरूप में अन्तर पड़ गया अर्थात् बंध पर्याय ही निजरूप ज्ञात हुई। स्वरूप में अन्तर पड़ने पर राग-द्वेष का ग्रहण हुआ, राग-द्वेष का ग्रहण होने पर क्रिया के कारक उत्पन्न हुए अर्थात् क्रिया, कर्त्ता, कर्मादि कारकों का भेद पड़ गया, कारक उत्पन्न होने पर अनुभूति क्रिया के समस्त फलों को भोगती हुई खिन्न हो गई, वह अज्ञान अब विज्ञानघन समूह में मग्न हुआ अर्थात् ज्ञानरूप में परिणमित हुआ; इसलिये अब वह सब वास्तव में कुछ भी नहीं है।

पर संयोग से ज्ञान ही अज्ञानरूप परिणमित हुआ था। अज्ञान पृथक् वस्तु नहीं था; इसलिये अब वह जब ज्ञानरूप परिणमित हुआ; तब अज्ञान कुछ भी नहीं रहा। अज्ञान के निमित्त से राग-द्वेष, क्रिया के कर्तृत्त्व, क्रिया के फल का भोक्तृत्व आदि भाव हुये थे। वे भी विलीन हो गये, एकमात्र ज्ञान ही रह गया। इसलिये, हे आत्मा ! स्व-पर के त्रिकालवर्ती भावों को ज्ञाता-दृष्टा होकर जानते- देखते ही रहो। **(क्रमशः)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : प्रवचनसार में विकार को शुद्धनय से जीव का कहने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : विकार को जीव ने स्वयं किया है, वह निज अपराध का ही कार्य है, वह विकार कर्म से या पुद्गल से उत्पन्न नहीं हुआ है ह्न ऐसा बतलाने के लिये विकार को शुद्धनय से जीव का कहा है।

प्रश्न : नयविवक्षा में बारहवें गुणस्थान तक अशुद्धनिश्चयनय होता है; वहाँ अशुद्धनिश्चयनय में शुद्धोपयोग कैसे घटता है ?

उत्तर : वस्तु का एकदेश की अपेक्षा कथन करना नय का लक्षण है और शुभ, अशुभ तथा शुद्ध द्रव्य का अवलम्बन करना उपयोग का लक्षण है; इसलिये अशुद्धनिश्चयनय में भी शुद्धात्मद्रव्य का अवलम्बन होने से, शुद्ध ध्येय होने से तथा शुद्ध साधक होने से शुद्धोपयोग परिणाम घटता है।

अशुद्धनय भले ही बारहवें गुणस्थान तक हो; परन्तु साधक जीव के उपयोग का अवलम्बन त्रिकाली शुद्ध ज्ञायकभाव है, उसका ध्येय शुद्ध है; अतः उसके भी पर्याय में शुद्धोपयोग होता है।

प्रश्न : यदि शब्द का पदार्थ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, तो वह शब्द पदार्थ का वाचक कैसे हो सकता है ?

उत्तर : 'प्रमाण अर्थात् ज्ञान का ज्ञेय पदार्थों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, तो भी वह ज्ञान पदार्थों को किसप्रकार जानता है ? ' ह्न यह बात भी उपर्युक्त शंका जैसी ही है अर्थात् जिसप्रकार ज्ञान और ज्ञेयपदार्थों का कोई सम्बन्ध नहीं है; तथापि ज्ञान ज्ञेयपदार्थों को जान लेता है; उसीप्रकार शब्द का पदार्थ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है तो भी शब्द पदार्थ का वाचक है ह्न इसमें आपत्ति क्या है ?

प्रश्न : ज्ञान और ज्ञेयपदार्थों में तो जन्य-जनक लक्षणवाला सम्बन्ध है ?

उत्तर: ऐसा नहीं है; क्योंकि वस्तु की शक्ति की अन्यपदार्थ द्वारा उत्पत्ति मानने

में विरोध आता है अर्थात् जो वस्तु जैसी है, उस वस्तु को उसीरूप में जानने की शक्ति को प्रमाण कहते हैं। जानने की यह शक्ति पदार्थों द्वारा उत्पन्न नहीं की जा सकती। यहाँ इस विषय में श्री जयधवल भाग 1, पृष्ठ 238 का एक श्लोक उद्धृत किया जाता है ह्न

''स्वत: सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमितिगृह्यताम्।
न हि स्वतोऽसती शक्ति: कर्तुमन्येन पार्यते।।

सर्व प्रमाणों में स्वत: प्रमाणता स्वीकार करना चाहिये अर्थात् प्रत्येक ज्ञान अपने से ही होता है ह्न ऐसा स्वीकार करना चाहिये; क्योंकि जो शक्ति पदार्थ में स्वत: विद्यमान न हो वह शक्ति अन्य पदार्थों द्वारा उत्पन्न नहीं की जा सकती।''

इसी श्लोक का उत्तरार्ध समयसार गाथा 116 से 120 के मध्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने लिखा है कि ह्न

''स्वयं परिणममानं तु न परं परिणमयितारमपेक्षेत। न हि वस्तुशक्तय: परमपेक्षंते। अर्थात् स्वयं परिणमन करनेवाले को अन्य परिणमन करानेवाले की अपेक्षा नहीं होती; क्योंकि वस्तु की शक्तियाँ पर की अपेक्षा नहीं रखती।''

प्रश्न: शुद्धनय के पक्ष का अर्थ क्या है ?

उत्तर : शुद्धनय का पक्ष अर्थात् शुद्धात्मा की रुचि हो जाना। यद्यपि अभी अनुभव नहीं हुआ है; तथापि रुचि ऐसी हुई है कि वह अनुभव करे ही करे। किसी जीव को रुचि तो न हो; परन्तु वह मान ले कि मुझे रुचि हो गई है तो उसके अनुभव का कोई नियम नहीं है। केवलीभगवान सम्यक्त्व सन्मुख जीव को वास्तव में जानते हैं कि इस जीव की रुचि ऐसी है कि वह अनुभव करेगा ही। ऐसी रुचिवाले जीव को वीर्य में ज्ञायक का जोर उछाल मारता है।

प्रश्न: क्रियानय और ज्ञाननय की मैत्री का क्या अर्थ है ?

उत्तर : पण्डित जयचंदजी ने ऐसा कहा है कि साधक जीव के शुद्धता और अशुद्धता दोनों ही एकसाथ रहती हैं ह्न इसका नाम मैत्री है; जबकि पण्डित राजमलजी की कलशटीका में ऐसा कहा है कि अशुद्धता की निवृत्ति वह मैत्री है, अशुद्धि रहे वह मैत्री नहीं है अर्थात् शुद्धता हुई, वह द्रव्य के साथ मैत्री है। •

महावीर जयन्ती पर अनेक कार्यक्रम

जयपुर (राज.) : यहाँ राजस्थान जैन सभा के तत्त्वावधान में भगवान महावीरस्वामी की जन्मजयन्ती पर आयोजित पंच दिवसीय कार्यक्रमों में दिनांक 22 अप्रैल को प्रात: विशाल जुलूस शहर के विविध मार्गों से होता हुआ रामलीला मैदान पहुँचा। जहाँ आचार्य विशदसागरजी, आचार्य महाप्रज्ञजी एवं मणिप्रभसागरजी का विशेष उद्बोधन हुआ। रात्रि में विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं पूर्वसंध्या पर राजस्थान चैम्बर भवन में कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया।

महावीर जयन्ती के दिन प्रात: श्री टोडरमल स्मारक भवन में विशेष पूजन के पश्चात् झण्डारोहण किया गया। पूर्व संध्या पर श्री दि. जैन महिला मण्डल की ओर से रात्रि में अक्षय निधि कार्यक्रम का विशेष आयोजन किया गया।

आदर्शनगर स्थित दिगम्बर जैन मुलतान मंदिर में श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला के बालकों एवं महिलाओं द्वारा विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये, जिसमें महिलाओं द्वारा मंचित **परिणाम बदल गया** नाटक विशेष रहा। कार्यक्रम का संयोजन पण्डित राजेशजी शास्त्री शाहगढ एवं निर्देशन पण्डित जितेन्द्रजी राठी ने किया। इस नाटक को पण्डित संतोषजी जैन शास्त्री ने लिखा।

2. मुम्बई (अणुशक्तिनगर) : इस अवसर पर देश के प्रमुख वैज्ञानिकों एवं इंजिनियरों ने डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया के प्रवचनों का लाभ लिया। डॉ. टडैया ने कहा कि जन-जन को हर्षित एवं कल्याणकारी जयन्ती महापुरुषों की ही होती है; अत: हमें अपने बच्चों को प्रेरणा देना चाहिये कि वे इस योग्य बनकर जन मानस पर वीतरागता की छाप छोड़ें। इसीसमय श्री अविनाशकुमारजी टडैया ने बच्चों में अच्छे संस्कार सत्चरित्र एवं तीक्ष्ण बुद्धि हेतु शिविरों को आयोजित करने की अपील की, जिसे वहाँ की समाज ने स्वीकार करते हुये शिक्षण-शिविर लगाने की घोषणा की।

3. मुम्बई (डोंबीवली) : इस अवसर पर स्थानीय श्री दि. जैन मंदिर में सप्त दिवसीय शिविर के अन्तर्गत दिनांक 22 अप्रैल को ब्र. यशपालजी जैन का प्रात: एवं रात्रि में महावीर जयन्ती पर विशेष प्रवचन हुआ। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम भी कराये गये।

4. पुणे (महा.) : यहाँ श्री अरहंत दिग. जैन ट्रस्ट, चिंचवड द्वारा विविध कार्यक्रमों के अन्तर्गत सौ. अंजलि शाह के प्रवचन और भक्ति संगीत का कार्यक्रम आयोजित हुआ। साथ ही दि. 15 से 22 अप्रैल तक जैन महासंघ पिंपरी-चिंचवड द्वारा अहिंसा सप्ताह मनाया गया।

5. वाशिम (महा.) : यहाँ जवाहर कॉलोनी में महावीर जयन्ती के अवसर पर पंचपरमेष्ठी विधान का आयोजन हुआ तथा पण्डित सुनीलकुमारजी बेलोकर के प्रवचन का लाभ मिला।

ब्र. यशपालजी का तूफानी दौरा

ब्र. यशपालजी जैन द्वारा दिनांक 1 व 2 अप्रैल, 2005 को **मालेगाँव (वाशिम)** में मार्मिक प्रवचन हुये। इसी अवसर पर जिनपूजन रहस्य नामक पुस्तक के मराठी संस्करण का विमोचन किया गया। दिनांक 3 अप्रैल को **शिरपुर (अंतरिक्ष पार्श्वनाथ)** में तथा दिनांक 5 व 6 अप्रैल को **वाशिम** में भी आपके प्रवचन का लाभ प्राप्त हुआ। दिनांक 11 से 19 अप्रैल, 2005 तक **इंडी (बीजापुर-कर्नाटक)** में तीनों समय गुणस्थान पर प्रौढ कक्षा के माध्यम से विस्तृत विवेचन किया गया, जिसमें श्री डी.आर. शाह, डॉ. सतीश शाह एवं श्री कोटी गुरुजी का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। दिनांक 23 से 27 अप्रैल तक **डोंबीवली (पूर्व)** में आपके द्वारा तीनों समय जिनधर्मप्रवेशिका पर प्रौढ़कक्षा ली गई। इसके अतिरिक्त पण्डित प्रसन्न शेटे जयपुर एवं पण्डित उमेश घोसरवाडे जयपुर द्वारा छहढ़ाला एवं रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर कक्षा तथा प्रवचन का लाभ मिला। दिनांक 30 अप्रैल से 7 मई, 2005 तक **कुर्डुवाडी (सोलापुर-महा.)** में आपके द्वारा दोनों समय जिनधर्म प्रवेशिका एवं दोपहर में छहढाला ग्रन्थ पर सुश्राव्य प्रवचन हुये। साथ ही पण्डित अनिलकुमारजी बेलोकर द्वारा रत्नकरण्डश्रावकाचार एवं मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर प्रवचन हुये एवं पण्डित उमेशजी द्वारा बालकक्षा ली गई।

वेदी प्रतिष्ठा सम्पन्न

बीना (सागर-म.प्र.) : यहाँ श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल के तत्त्वावधान में दिनांक 23 से 28 अप्रैल,05 तक क्रमबद्धपर्याय शिक्षण-शिविर पंचपरमेष्ठी विधान एवं वेदी शिलान्यास का का आयोजन ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली एवं बा.ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना के प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ। **– सत्येन्द्र जैन**

हमारे गौरव

1. अ. भा. जैन युवा फैडरेशन के प्रान्तीय उपाध्यक्ष डॉ. महावीरप्रसादजी जैन उदयपुर एवं फैडरेशन के प्रदेश प्रतिनिधि श्री जिनेन्द्र शास्त्री उदयपुर को दि. जैन महासमिति महिला संभाग उदयपुर द्वारा अपने स्थापना दिवस के अवसर पर एक भव्य समारोह में पुलिस महानिरीक्षक श्री वी.के. गोदीका के करकमलों से शाल-प्रशस्तिपत्र आदि भेंटकर सम्मानित किया गया। यह सम्मान उनके द्वारा किये गये सामाजिक व धार्मिक कार्यों की सेवा के फलस्वरूप दिया गया है।

2. डडूका (राज.) : पण्डित रितेशजी शास्त्री को बांसवाडा में संकुलस्तर पर बालिका शिक्षक सम्मान समारोह में बालिकाओं में शिक्षा के प्रचार-प्रसार, नामांकन, ठहराव एवं जन जातीय क्षेत्र में संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में दिये गये योगदान को देखते हुये प्रतीक चिन्ह एवं प्रशस्तिपत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया।

उक्त सभी को वीतराग-विज्ञान परिवार की ओर से हार्दिक बधाई !

पंचपरमेष्ठी एवं प्रवचनसार विधान सम्पन्न

1. सोलापुर (महा.) यहाँ श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ दि.जैन कासार मंदिर में 19 व 20 मार्च को पंचपरमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित राजकुमारजी आलंदकर एवं पण्डित विक्रांतजी शाह के प्रवचन का लाभ मिला। रात्रि में बाल कक्षा, भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये। विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित प्रशांतकुमारजी मोहरे ने कराये। इसीसमय वी.वि. पाठशाला की परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों को पुरस्कृत किया।

2. श्री आदिनाथ दि. जैन मंदिर में अष्टान्हिका पर्व के अवसर पर दिनांक 24 से 27 मार्च, 2005 तक प्रवचनसार विधान का आयोजन हुआ। इस प्रसंग पर पण्डित जिनचन्दजी आलमान हेरले एवं पण्डित राजकुमारजी आलंदकर सोलापुर के प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ। कार्यक्रम का संचालन एवं विधि-विधान के कार्य पण्डित विजयकुमारजी कालेगोरे, पण्डित विक्रांतजी शास्त्री एवं कु. ऋजुता व कु. पूजा ने कराये।

बाल संस्कार शिविर सम्पन्न

1. देवलाली (नासिक-महा.) : यहाँ श्री दि. जैन मुमुक्षु समाज बृहन्मुम्बई के तत्त्वावधान में श्री अ. भा. जैन युवा फैडरेशन जवेरी बाजार, मुम्बई द्वारा आयोजित एक मुमुक्षु भाई हस्ते ब्र. चेतनाबेन देवलाली के सहयोग से दिनांक 20 से 27 अप्रैल, 2005 तक सप्तम आध्यात्मिक बाल शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पण्डित संजयजी जैन अलीगढ, पण्डित ऋषभजी शास्त्री अहमदाबाद, ब्र. ललिताबेन भिवण्डी, ब्र. चेतनाबेन देवलाली, पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर, डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया मुम्बई, कु. जयन्ती शाह मुम्बई एवं पण्डित ज्ञायक जैन अलीगढ आदि विद्वानों द्वारा प्रौढ एवं बाल कक्षा का आयोजन किया गया।

ज्ञातव्य है कि इससे पूर्व यहाँ दिनांक 26 मार्च से 30 मार्च, 2005 तक श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल खण्डवा से एक संघ तीर्थवन्दना हेतु आया था। इस अवसर पर पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री के 20 तीर्थंकर विधान की जयमाला पर प्रवचन हुये। साथ ही पण्डित हेमचन्दजी हेम, पण्डित मन्नूलालजी जैन सागर, पण्डित मधुकरजी जैन जलगांव, पण्डित ज्ञायक जैन एवं डॉ. इन्द्रकुमारजी खण्डवा द्वारा प्रौढ कक्षायें ली गई।

2. सेलू (महा.) : अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन नागपुर द्वारा संचालित महाराष्ट्र प्रान्त तत्त्व प्रचार-प्रसार योजना के अन्तर्गत दिनांक 17 से 21 अप्रैल, 2005 तक श्री नेमिनाथ दि. जैन मंदिर में बाल संस्कार शिविर एवं विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर प्रात: एवं रात्रि में पण्डित अनंतकुमारजी विश्वंभर के मार्मिक प्रवचन हुये तथा पण्डित सुनीलजी बेलोकर ने स्थानीय विद्वान अशोकजी वानरे के मार्गदर्शन में बाल एवं प्रौढ़कक्षा ली। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये।

उपकार दिवस हर्षोल्लासपूर्वक मनाया

दिल्ली : यहाँ आत्मसाधना केन्द्र में दिनांक 1 मई, 2005 को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की जन्मजयंती उपकार दिवस के रूप में मनाई गई। प्रात: जिनेन्द्र अभिषेक पूजन के पश्चात् श्री सम्मेदशिखर विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने कहा कि गुरुदेवश्री ने मोक्षमार्ग बताकर हम पर महान उपकार किया है। उन्होंने जो तत्त्वज्ञान हमें दिया है, उसको आत्मसात करके ही हम उन्हें सच्ची श्रद्धांजली दे सकते हैं। डॉ. भारिल्ल के अतिरिक्त डॉ. सुदीपजी जैन, डॉ. वीरसागरजी जैन, श्री विमलकुमारजी जैन एवं श्री अजीतप्रसादजी जैन ने भी अपने उद्‌गार व्यक्त किये।

पण्डित संदीपजी शास्त्री ने ट्रस्ट का परिचय दिया एवं श्री आदीशजी जैन ने आभार व्यक्त किया। संचालन श्रीमती ममता जैन ने किया। विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पं. सुनील धवल भोपाल एवं पं. अमित शास्त्री फुटेरा ने सम्पन्न कराये।

तीर्थयात्रा सम्पन्न

रतलाम से होली के समय श्री निर्मलजी गोधा एवं पं. पदमजी अजमेरा के संयोजकत्व में 50 यात्रियों का एक दल श्री बावनगजा सिद्धक्षेत्र की वंदना हेतु गया; जिसमें पं. विमलदादा झांझरी एवं पं. प्रदीपजी झांझरी के प्रवचनों का लाभ मिला। 4 अप्रैल को अजमेराजी के साथ एक दल मंगलायतन पहुँचा, जहाँ पं. देवेन्द्रजी बिजौलिया एवं पं. संजयजी शास्त्री जेवर के प्रवचनों का लाभ लिया। संघ ने सासनी, मथुरा एवं श्री महावीरजी क्षेत्र के भी दर्शन किये। **ह्न जम्बू पाटोदी**

वैराग्य समाचार

1. **गोहाटी निवासी** श्रीमती उमराव देवी ध.प. स्व. श्री मिश्रीलालजी बाकलीवाल का दिनांक 3 अप्रैल, 2005 को शांतपरिणामपूर्वक कोलकाता में देहावसान हो गया है। आप धर्मपरायण विदुषी महिला थीं। आपने अपने जीवन का अन्तिम समय सम्मेदशिखरजी में रहकर धर्मध्यानपूर्वक व्यतीत किया। आप श्री मोहनलालजी सेठी गोहाटीवालों की बड़ी बहिन थीं।

2. **जयपुर निवासी** श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य डॉ. गुलाबचन्दजी जैन का 86 वर्ष की आयु में दिनांक 21 अप्रैल, 2005 को अत्यन्त शान्त परिणामों से देहावसान हो गया है। आप जैनदर्शन एवं न्याय के अच्छे विद्वान थे।

3. **मुम्बई निवासी** श्री जयेन्द्रभाई के पिता श्री जयन्तीभाई दोशी का 79 वर्ष की आयु में 1मई, 05 को देहावसान हो गया है। गुरुदेवश्री के तत्त्वप्रचार की गतिविधियों में संलग्न सभी संस्थाओं को आपका सक्रिय सहयोग रहता था। ज्ञातव्य है कि टोडरमल स्मारक भवन स्थित जिनमंदिर के पंचकल्याणक में आपको बाल तीर्थंकर के माता-पिता बनने का सौभाग्य मिला था।

4. **जयपुर निवासी** श्री अरुणजी सोनी (जैन) का दिनांक 2 मई, 2005 को देहावसान हो गया है। आप अच्छे समाजसेवी एवं पत्रकार तथा अनेक धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं के पदाधिकारी थे। आपके स्वर्गवास से जयपुर जैन समाज को अपूरणीय क्षति हुई है।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों ह्न यही मंगल भावना है।